THE ECONOMIC TIMES

Date:24-02-24

Tap the Rush of Adrenaline Tourism

Adventure seekers are looking at supply side

ET Editorials

India has always punched below its weight when it comes to domestic tourism. Within this sector, adventure tourism is virtually untapped. The 2020 Adventure Tourism Development Index ranks India 96th among 191 countries, below Bhutan (14th) and Nepal (67th). This is due to a lack of infrastructure, trained personnel, stringent safety guidelines, and a cohesive policy among GoI, states, private sector and local communities. But 'adrenaline tourism' is finally taking off, fuelled by rising incomes, diverse landscapes, social media-spurred enthusiasm, access to specialised gear and better work-life balance. Post-pandemic revenge tourism has also been a propeller. High-altitude trekking, biking, rafting, scuba diving and snorkelling, surfing, caving, glamping.... It's no longer just about poolside and room service.

With the demand curve for adrenaline tourism rising, GoI must help the supply side. In 2022, the tourism ministry released the National Strategy for Adventure Tourism. It focuses on developing adventure destinations, training and certifying activity service providers and their staff, skill development and capacity building — and marketing. A sub-brand is being planned under the Incredible! india campaign, as is a state ranking on adventure tourism. This can spur healthy competition, nudge private investment and promote sustainable tourism. On the safety side, a national-level rescue and communication grid is in the offing.

While no comprehensive data is available on the turnover of all adventure sporting activities, sports goods retailer Decathlon posted a 35% spike in India sales in FY23 at ₹3,955 crore, compared with ₹2,936 crore in FY22. Indiahikes, a trekking leader, had an almost 100% growth y-o-y in the last 10 years. India is sitting on an adrenaline tourism goldmine. Along with revenue, it can create jobs and promote fitness in a country with a growing graph of lifestyle diseases. The sector now just has to climb, glide, hike and swim ahead in a planned and sustainable manner to tap the growing rush.

Date:24-02-24

Forest n. Large Area Covered with Trees

ET Editorials

Hearing a batch of petitions that challenged the 2023 amendments to Forest (Conservation) Act (FCA) 1980, a Supreme Court bench earlier this week stated that states and UTs must go by the 'dictionary definition' of 'forest' — all statutorily recognised forests, whether designated as reserved, protected or otherwise — to determine whether any work can be approved on a land. Crucially, it directed GoI to get information from states regarding lands identified as forests based on lexical interpretation, as outlined in the 1996 Godavarman ruling, and that no zoos or safari parks can be set up in such areas without the court's nod. The 1996 ruling expanded the definition of forests beyond those notified or recorded officially. It directed states to form committees to review what could be classified as forests as per dictionary definition. Only two states — Kerala and Assam — submitted theirs. According to experts, they are shoddy and lack groundtruthing and cadastral surveys.

Yet, without crucial data, Van (Sanrakshan Evam Samvardhan) Adhiniyam 2023 was passed. Petitioners in the case claim it would result in declassification of over 1,97,000 sq km of forests protected under the 1996 definition. They also rightly argued that setting up zoos and safaris in such ecologically important areas would open floodgates for the commercialisation of forests. The 2023 law has also been criticised as its cornerstone is compensatory afforestation, even though it can't compensate for ecological costs of destroying a mixed forest.

The court ruling upholds the importance of transparency and accountability. States must provide data, and GoI must review them with an open mind. But, above all, both must consider forests a public good and commit to protecting them.

दैनिक भास्कर

Date:24-02-24

कृषि - नीति में बदलाव से ही समस्याएं दूर होंगी

संपादकीय

कृषि लागत एवं मूल्य आयोग हर राज्य में 23 कृषि उत्पादों के लागत मूल्य का आकलन करता है। इस आयोग की वर्ष 2024-25 (रबी) की रिपोर्ट बताती है कि पंजाब और हरियाणा के किसान प्रति हेक्टेयर सर्वाधिक क्रमशः 49.45 और 48.02 क्विंटल गेहूं उगाते हैं, जबकि झारखंड और हिमाचल के किसान सबसे कम क्रमशः 21.78 और 22.01 क्विंटल। सबसे कम लागत पंजाब और हरियाणा के किसान की है जो क्रमशः 832 और 988 रुपए प्रति क्विटंल है। इसके उलट

महाराष्ट्र और हिमाचल के किसानों की लागत सबसे अधिक क्रमशः 2195 और 1738 रुपए है। सरकार का दावा है कि इस लागत में 50 प्रतिशत जोड़ कर वह एमएसपी तय करती है, जो इस समय 2275 रुपए है। यानी पंजाब के किसान को 50 फीसदी की जगह तकरीबन दोगुनी कीमत मिल रही है, जबकि महाराष्ट्र और हिमाचल के किसानों को बेहद कम । अगर किसानों की मांग के अनुरूप सी-2 फॉर्मूले से लागत का 50 प्रतिशत दिया जाता तो इन राज्यों के किसानों को घाटा होता। क्या उचित नहीं होगा कि लागत में फर्क होने से हर राज्य के लिए अलग-अलग एमएसपी तय की जाए ताकि सिंचाई सुविधा संपन्न पंजाब, सूखाग्रस्त महाराष्ट्र और बिहार के किसान भी अपनी उपज का समान लाभ ले सकें? कृषि नीति में आमूलचूल बदलाव ही एकमात्र रास्ता है।

दैनिक जागरण

Date:24-02-24

संभव है एमएसपी की गारंटी देना

चौधरी पुष्पेंद्र सिंह, (लेखक किसान शक्ति संघ के अध्यक्ष हैं)

तीन वर्ष पूर्व तीन कृषि कानूनों के निरस्तीकरण और न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी एमएसपी की गारंटी की मांगों को लेकर किसने का बड़ा आंदोलन हुआ। लगभग 13 महीनों तक किसान दिल्ली की सीमाओं पर बैठे रहे। अंततः सरकार ने 19 नवंबर, 2021 को वे कानून वापस ले लिए। साथ ही सरकार ने एमएसपी समेत अन्य मांगों के क्रियान्वयन हेतु एक उच्चस्तरीय समिति बनाई, परंतु इस समिति ने कोई ठोस कार्रवाई नहीं की। सरकार के इस रवैये से निराश होकर किसान संगठनों ने 13 फरवरी को दिल्ली कूच का एलान किया। इसके बाद सरकार सक्रिय हुई और किसानों से वे बार बार्ता की, जो सफल नहीं हुई। अंततः पंजाब के किसान संगठनों ने दिल्ली कूच शुरू कर दिया और हरियाणा की सीमाओं पर आकर डट गए, जहां अवरोध लगाकर उन्हें रोक दिया गया। इसके बाद भी बार्ताओं के दौर हुए, जिसमें भी बात नहीं बनी। सरकार ने पांच फसलों अरहर, मसूर, उड़द मक्का और कपास पर अगले पांच सालों तक एमएसपी पर खरीद का प्रस्ताव दिया, जिसे किसान नेताओं ने खारिज कर दिया। किसानों की मूल मांग यह है कि एमएसपी से कम फसलों की खरीद कानूनी रूप से वर्जित हो यानी कोई व्यापारी या संगठन जब फसल खरीदे तो एमएसपी वैधानिक रूप से 'आरक्षित मूल्य' हो। इससे कम मूल्य पर खरीद न हो। एमएसपी का निर्धारण भी कृषि लागत एवं मूल्य आयोग द्वारा संपूर्ण लागत बनी सी-2 पर 50 प्रतिशत मुनाफा जोड़कर हो, जैसा स्वामीनाथन आयेग की सिफारिश थी और जैसा प्रधानमंत्री का वादा भी था।

एमएसपी की गारंटी की मांग किसानों विशेषकर छोटे किसानों के लिए महत्वपूर्ण है इस मांग का गणित समझना आवश्यक है। अभी देश में 23 फसलों की एमएसपी घोषित होती है। इसमें मुख्य रूप से गेहूं, धान, मोटे अनाज, दालें, तिलहन, गन्ना और कपास जैसी फसलें शमिल हैं। 2023-24 में इन फसलों का एमएसपी पर कुल मूल्य लगभग 15 लाख करोड़ रुपये बनता है। किसान स्वयं भी बड़ी मात्रा में फसलों का उपभोक्ता है। वह लगभग एक तिहाई यानी पांच लाख करोड़ रुपये मूल्य की फसलें स्वयं के उपभोग पशुओं के आहार, बीज, अन्न विनिमय आदि में इस्तेमाल करता है।

कुछ हिस्सा कटाई, ढुलाई और भंडारण में खराब हो जाता है। एमएसपी वाली फसलों में से करीब 10 लाख करोड़ रुपये मूल्य की फसलें ही बाजार में बिक्री हेतु आती हैं। इसमें से गन्ने समेत सरकारी खरीद लगभग 4-5 लाख करोड़ रुपये मूल्य की है। बाकी लगभग 5-6 लाख करोड़ रुपये की फसलें ही निजी क्षेत्र द्वारा खरीदी जाती हैं। एक अनुमान के अनुसार व्यापारी एमएसपी से औसतन 25 प्रतिशत कम पर फसलें खरीदते हैं। यदि एमएसपी की वैधानिक गारंटी हो तो व्यापारियों को अधिकतम 1.5 लाख करोड़ रुपये और अतिरिक्त भुगतान किसानों को करना होगा। यदि एमएसपी गारंटी के इस सरे खर्चे को सरकार उठा ले तो भी 1.5 लाख करोड़ रुपये का ही अधिकतम खर्च आएगा। यह राशि हमारी जीडीपी के आधे प्रतिशत से भी कम है। साफ है कि इससे महंगाई बढ़ने की आशंका भी निर्मूल दिखती है।

किसानों की मांग यह नहीं है कि सारी फसलें सरकार ही खरीदे। सरकार अपनी जरूरत भर ही खरीद करे किसानों की मांग निजी क्षेत्र या सरकार को सारी फसलें खरीदने के लिए बाध्य करना भी नहीं है, पर यदि कोई व्यापारी अन्न बाजार में उतरता है तो वह किसन को एमएसपी वाली कीमत देने के लिए कानूनी रूप से बाध्य हो इस मांग को मानने से केवल व्यापारियों पर अंकुश लगेगा सरकार का एक रुपया भी अतिरिक्त खर्च नहीं होगा। उलटे अतिरिक्त धनराशि किसानों को मिलने से अर्थव्यवस्था में मांग के साथ रोजगार बढ़ेंगे और निवेश के साथ टैक्स बढ़ेगा। सरकार को व्यापारी हित से ज्यादा किसान हित को संरक्षण देना चाहिए। कुछ अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि एमएसपी को निजी क्षेत्र पर बाध्यकारी नहीं किया जा सकता, पर कई बार सरकार जनहित या वर्गहित में वस्तुओं का मूल्य निर्धारित या नियंत्रित करती है। सरकार गन्ने का जो दाम घोषित करती है, उसी पर निजी चीनी मिलें गन्ना खरीदती हैं। इसी प्रकार मजदूरों का शेषण रोकने के लिए न्यूनतम मजदूरी दर और राजस्व की सुरक्षा हेतु जमीनों का न्यूनतम बिक्री मूल्य और सेक्टर रेट घोषित करती हैं। इसी तरह फसलों की एमएसपी खरीद की गारंटी क्यों नहीं हो सकती? एक तर्क यह भी दिया जा रहा कि यदि एमएसपी बाध्यकारी रहे तो व्यापारी फसलें नहीं खरीदेंगे और किसान बर्बाद हो जाएंगे और सरकार सारी फसल खरीदने को मजबूर होगी। क्या गन्ने का मूल्य घोषित करने से चीनी मिलें बर्बाद हो गई? क्या सारा गन्ना सरकार खरीद रही है? क्या न्यूनतम मजदूरी कानून से कोई उद्योग मजदूरों को रोजगार नहीं दे रहा? चूंकि व्यापारी जिस मूल्य पर अनाज खरीदते हैं उस पर मुनाफा जोड़कर आगे बेचते हैं, अतः उन्हें कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। एमएसपी कानून के चलते जब सरकार और व्यापारी एक मूल्य पर ही खरीद करेंगे तो सरकार अधिक खरीद भंडारण और वितरण की समस्या और इस कारण सरकारी खजाने पर पड़ रहे अतिरिक्त आर्थिक बोझ से भी बचेगी जब सभी फसलें एमएसपी पर बिकेंगी तो किसान गेहूं धान के फसल चक्र से भी निकलकर अन्य फसलों का उत्पादन बढ़ाएगा। इससे हम दलहन और तिलहन में भी आत्मनिर्भर हो जाएंगे। यहाँ यह ध्यान रहे कि 2019 में कंपनियों पर कारपोरेट टैक्स घटाने के निर्णय से ही सरकार को लगभग डेढ़ लाख करोड़ रुपये से ज्यादा का घाटा प्रतिवर्ष हो रहा है। एमएसपी बाध्यकारी बनाने से सरकार को कोई घाटा नहीं होगा, क्योंकि एमएसपी कानून बनने से अतिरिक्त राशि सरकार को नहीं चुकानी व्यापारियों और निजी क्षेत्र की कंपनियों के लिए भी यह बड़ी रकम नहीं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:24-02-24

नाटो की पहेली

संपादकीय

आज यानी शनिवार 24 फरवरी को यूक्रेन पर रूस के हमले को दो वर्ष पूरे हो रहे हैं। लेकिन कीव (यूक्रेन की राजधानी), मॉस्को और ब्रसेल्स (यूरोपीय संघ और उत्तर अटलांटिक संधि संगठन यानी नाटो का मुख्यालय) में सबकी नजरें नवंबर में होने वाले अमेरिका के राष्ट्रपति चुनावों पर लगी हुई हैं। इन चुनावों में रिपब्लिकन पार्टी की ओर से डॉनल्ड ट्रंप का नामांकन तय माना जा रहा है और उनके दोबारा राष्ट्रपति बनने की काफी अधिक संभावना है यूरोपीय संघ और यूक्रेन के लिए ट्रंप की जीत से बुरा शायद ही कुछ घटित हो यह बात 10 फरवरी को उस समय साबित हुई जब उन्होंने कहा कि उनके नेतृत्व में अमेरिका नाटो के ऐसे सदस्य देश का बचाव नहीं करेगा जो अपने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का दो फीसदी से भी कम हिस्सा रक्षा पर खर्च करता हो। इसके उलट उन्होंने जोर देकर कहा कि वह रूस से कहेंगे कि वह जो करना चाहता है करे। यह वक्तव्य पिछले दिनों म्यूनिख सुरक्षा सम्मेलन में छाया रहा और यह 75 साल पुराने इस समझौते के अनुच्छेद पांच का उल्लंघन करता है जिसमें कहा गया है कि नाटो के किसी सदस्य देश पर हमले को सभी सदस्यों पर हमला माना जाएगा। वह यूक्रेन के लिए जाहिर तौर पर बुरी खबर है क्योंकि वह पहले ही रक्षा उपकरणों की कमी से जूझ रहा है। उधर अमेरिकी कांग्रेस के रिपब्लिकन बहुल निम्न सदन में यूक्रेन को सैन्य और नागरिक सहायता देने का विरोध किया जा रहा है। यूक्रेन नाटो का पूर्ण सदस्य नहीं है लेकिन वह उसके दशक भर पुराने एक कार्यक्रम का हिस्सा है जिसका अर्थ यह है कि वह नाटो के साथ करीबी सहयोग करता है। यूक्रेन को लगने वाला सैन्य झटका यूरोप की सुरक्षा के लिए भी खतरा होगा।

नाटो के सदस्यों द्वारा अपेक्षा से कम व्यय ने भी ट्रंप और उनके पहले के राष्ट्रपतियों को नाराज किया था। हालांकि उनकी नई धमकी में इस तथ्य की अनदेखी की गई है कि दो फीसदी निवेश का निर्देश बाध्यकारी नहीं है। सबसे पहले 2006 में नाटो के रक्षा मंत्रियों ने यह वादा इसलिए किया था कि इससे बोझ को वहन करने में आसानी होगी जब रूस ने 2014 में क्राइमिया का अधिग्रहण कर लिया तो इस बात को दोहराया गया। ट्रंप प्रशासन का यह कहना सही था कि अधिकांश नाटो सदस्य इस प्रतिबद्धता की अनदेखी करते हैं। वर्ष 2014 में केवल तीन सदस्य देशों ने अपने जीडीपी का दो फीसदी रक्षा पर खर्च किया था। उसके बाद से हालात में बदलाव आया है क्योंकि यूरोप को डर है कि रूस कभी भी आक्रमण कर सकता है। इस वर्ष नाटो के 31 में से 18 सदस्य देशों के इस लक्ष्य को हासिल करने की अपेक्षा है। बाल्टिक देश जो रूसी आक्रमण की स्थिति में सुरक्षा की पहली पंक्ति के रूप में सामने आएंगे, उन्होंने अपनी पूर्वी सीमा को सुदृढ़ करने का काम आरंभ कर दिया है। पारंपरिक और परमाणु हथियार दोनों ही क्षेत्रों में यूरोप और रूस में जो असमानता है उसे देखते हुए यह स्पष्ट नहीं है कि नाटो बिना अमेरिकी सैन्य मदद के प्रभावी बचाव कैसे कर पाएगा। विश्लेषकों का कहना है कि यूरोप को अधिक व्यय करना होगा।

भारत के लिए सवाल यह है कि उसे अमेरिका के अलावा नाटो को लेकर किस तरह की प्रतिक्रिया देनी चाहिए। यह समूह विश्व युद्ध के बाद के सुरक्षा ढांचे में अहम रहा है। यह बात ध्यान देने वाली है कि गत वर्ष जून में भारत ने अमेरिका की उन भावनाओं को नकार दिया था जिनमें वह चाहता था कि भारत चीन पर केंद्रित नाटो प्लस में शामिल हो। इस समूह में नाटो के अलावा अमेरिका के पांच सहयोगी देश- ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान, इजरायल और दक्षिण कोरिया शामिल हैं। यह अनौपचारिक समूह चीन के साथ क्षेत्रीय तनाव की स्थिति में सुरक्षा मुहैया करा सकता है विदेश मंत्री का कहना था कि इसमें शामिल होने से देश की सामरिक स्वायत्तता सीमित हो जाएगी। खासतौर पर यह देखते हुए कि भारत शांघाई सहयोग संगठन का भागीदार है भारत का कूटनयिक संतुलन उसे अच्छी स्थिति में रखे हुए है। अटलांटिक पार के संबंधों में किसी भी तरह के बदलाव में इस बात को ध्यान में रखना चाहिए।

Date:24-02-24

बैंकिंग क्षेत्र के कानून और नियामकीय बदलाव

के पी कृष्णन, (लेखक पूर्व लोक सेवक, सीपीआर में मानद प्रोफेसर एवं कुछ लाभकारी एवं गैर-लाभकारी निदेशक मंडलों के सदस्य हैं)

भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने एक प्रेस विज्ञप्ति जारी करते हुए पेटीएम पेमेंट्स बैंक लिमिटेड (पीपीबीएल) को तत्काल प्रभाव से नए ग्राहकों को जोड़ने से रोक दिया। मौजूदा ग्राहकों को अपने सभी खातों से शेष राशि निकालने या इसका उपयोग करने की अनुमति दी गई, लेकिन अतिरिक्त जमा या ऋण लेनदेन की अनुमति नहीं। अब 15 मार्च के बाद पीपीबीएल द्वारा कोई अन्य बैंकिंग सेवाएं नहीं दी जा सकती हैं। अनिवार्य रूप से, आरबीआई ने पीपीबीएल का संचालन बंद कर दिया है। सवाल यह है कि आखिर ऐसा क्यों किया गया?

आरबीआई जैसा प्रतिष्ठित नियामक बिना किसी कारण और बिना किसी औचित्य के कार्रवाई नहीं करता है। हम यह मानते हैं कि पीपीबीएल ने नियमों का गंभीर उल्लंघन किया जिसकी वजह से सख्त प्रतिक्रिया देने की आवश्यकता पड़ी। संभावना है कि पहले भी कई छोटे स्तर के उल्लंघन हुए हों। हम यह भी अनुमान लगा सकते हैं कि पीपीबीएल के शीर्ष प्रबंधन को उल्लंघनों के बारे में सूचना दी गई थी और उन्हें अपनी पिछली गलतियों को सुधारने का भी मौका दिया गया होगा। लेकिन यह सब अनुमान है और सच तो यही है कि हम इसके बारे में नहीं जानते हैं।

आरबीआई द्वारा पीपीबीएल पर की जा रही कार्रवाई की वजह सवालों में घिरी है। इस कार्रवाई को सही ठहराने के लिए आरबीआई ने अभी तक कोई औपचारिक कानूनी आदेश जारी नहीं किया है जिसमें इसकी नाकामी और कार्रवाई के औचित्य के बारे में बताया गया हो। हमारे पास केवल एक प्रेस विज्ञप्ति है जिसमें कोई सबूत या कारण बताए बिना ही दंड निर्धारित करने की बात है।

प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया है, 'बाहरी लेखा परीक्षकों (ऑडिटर) की व्यापक लेखा रिपोर्ट और बाद में किए गए अनुपालन सत्यापन रिपोर्ट ने बैंक में लगातार गैर-अनुपालन और निरंतर निगरानी की चिंताओं का खुलासा किया, जिसके लिए आगे निगरानी की आवश्यकता जताई गई है।'

यह बयान कई सवालों को अनुत्तरित छोड़ देता है। हम नहीं जानते कि कोई सुनवाई हुई थी या नहीं क्योंकि हमने पीपीबीएल का पक्ष नहीं सुना है और हमें आरबीआई द्वारा पीपीबीएल के बचाव का खंडन किए जाने की जानकारी नहीं है। इस प्रकार, यह स्पष्ट नहीं है कि दंडात्मक कार्रवाई लागू करने से पहले सार्वजनिक प्राधिकरणों द्वारा उचित प्रक्रिया और कानून के शासन के सिद्धांतों का पालन किया गया था या नहीं।

पीपीबीएल मामले में आरबीआई की कार्रवाई की प्रक्रिया उचित है या नहीं, यह सवाल इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि इंगलैंड के लॉर्ड चीफ जस्टिस, लॉर्ड ह्यूर्ट ने 1924 के एक मामले में एक टिप्पणी की थी जो बेहद मशहूर है, 'यह न केवल

महत्वपूर्ण है बल्कि यह बुनियादी रूप से महत्वपूर्ण है कि न केवल न्याय हो बल्कि स्पष्ट और निस्संदेह रूप से न्याय होता दिखना भी चाहिए।'

इसका अर्थ यह है कि अनिवार्य रूप से कानून के शासन और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाए:

1. कानून का शासन का अर्थ सभी के साथ समान व्यवहार करना, सभी के लिए एक ही कानून हो और इसके अलावा कानूनी प्रक्रिया में निष्पक्ष प्रक्रियाएं हों। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका इसे कुछ इस तरह परिभाषित करता है, 'वह तंत्र, प्रक्रिया, संस्था, व्यवहार या नियम जो कानून के समक्ष सभी नागरिकों की समानता का समर्थन करता है और स्वेच्छाचारी शासन को रोकना सुनिश्चित करने के साथ ही सामान्य रूप से शक्ति के मनमाने इस्तेमाल को रोकता है।'

2. कानून के शासन की अवधारणा की तरह ही प्राकृतिक न्याय की अवधारणा है जिसमें दो बुनियादी तत्त्व शामिल हैं। पहला सिद्धांत यह है कि किसी भी व्यक्ति का आकलन निष्पक्ष सुनवाई के बिना नहीं आंका जाना चाहिए ताकि उन्हें अपने खिलाफ सबूत का जवाब देने का अवसर मिले। दूसरा सिद्धांत यह है कि कोई व्यक्ति अपने ही मामले में न्यायाधीश नहीं हो सकता।

आधुनिक बाजार अर्थव्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए कानून का शासन और निष्पक्ष प्रक्रियाएं अनिवार्य हैं। अनियंत्रित शासन न केवल अनुचित है, बल्कि यह निजी निवेश को हतोत्साहित भी करता है। क्या यह संभव है कि बैंकिंग अन्य क्षेत्रों से कुछ अलग है, ऐसे में इस क्षेत्र से संवैधानिक कानूनों की बुनियाद ही खत्म कर दी जाए। अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देशों में बैंकिंग नियमन के ताजा उदाहरण यह स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि बैंकिंग क्षेत्र में भी कानून के शासन और संवैधानिक मूल्यों का पालन करते हुए काम किया जा सकता है।

एक और संभावना यह है कि अगर आरबीआई इन मामले में बहुत अधिक पारदर्शिता दिखाता तो इससे जमाकर्ताओं के बीच अपनी जमाएं निकालने की होड़ लगने के साथ ही दहशत फैल सकती थी। ऐसे में यह तर्क दिया जाता है कि बैंकों के नियमन और निगरानी के लिए कानून के शासन की प्रक्रिया उचित नहीं है। लेकिन यह तर्क यहां नहीं दिया जा सकता है। आरबीआई की कार्रवाई से पहले पीपीबीएल के 3 करोड़ से अधिक खाते, 7 लाख से अधिक पॉइंट-ऑफ-सेल टर्मिनल थे। साथ ही पीपीबीएल से 3.5 करोड़ से अधिक यूपीआई क्यूआर कोड और 30 करोड़ से अधिक वॉलेट जुड़े हुए थे।

इसके अलावा, भारतीय सड़कों पर लगभग 1 करोड़ फास्टैग पीपीबीएल के थे। इन सभी पर आरबीआई की कार्रवाई का असर पड़ेगा। चूंकि इन सभी उपयोगकर्ताओं को नहीं पता कि पीपीबीएल में क्या गड़बड़ी हुई है और उन्हें केवल आरबीआई की सख्त कार्रवाई ही दिख रही है। ऐसी स्थिति में घबराहट की स्थिति बन सकती है और आरबीआई की कार्रवाई के चलते ही बैंक जमाएं निकल सकती हैं। इसके अलावा बाजार में यह भी अफवाह है कि केवल पीपीबीएल ही अकेला नहीं है ऐसे में कई नए दौर की वित्तीय कंपनियां भी दबाव का सामना कर रही हैं।

जहां तक प्राकृतिक न्याय के दूसरे सिद्धांत का सवाल है ऐसे में यह सवाल प्रासंगिक होगा कि क्या पीपीबीएल की निगरानी करने वाले और नियमों के उल्लंघन को अनूठा बताने वाले लोग, क्या उन लोगों से अलग थे जिन्होंने सबूतों का आकलन किया और यह निष्कर्ष निकाला की सख्त कदम की दरकार है। पूरी संभावना है कि ये अलग-अलग लोग होंगे। लेकिन हमें इसकी कोई जानकारी नहीं हैं।

फिलहाल उपलब्ध जानकारी के आधार पर यह कहना मुश्किल है कि प्राकृतिक न्याय के दोनों सिद्धांतों का पूरी तरह से पालन किया गया है। इस समय यह स्पष्ट नहीं है कि न्याय को स्पष्ट रूप से और निस्संदेह रूप से लागू किया गया है।

सवाल यह है कि क्या आरबीआई को इस संकट के लिए दोषी ठहराया जाए? शायद नहीं। बैंकिंग नियमन कानून की धारा 35 ए प्रभावी तरीके से वहीं करने के लिए कहती है जो इसने किया है। आरबीआई के कर्मचारी पुराने कानून पर अमल कर रहे हैं जिनका पालन करना उनके लिए अनिवार्य है।

अब वक्त आ गया है कि इन पुराने कानूनों पर पुनर्विचार किया जाए। यह भारत की आधुनिक अर्थव्यवस्था के संस्थानों के निर्माण की यात्रा का हिस्सा है। इसका उदाहरण भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) है जिस मामले में 'स्पष्ट आदेश' (कारणों सहित) की अवधारणा के परिणामस्वरूप दो घटनाक्रम सामने आए जैसे कि आधुनिक कानून के तौर पर सेबी अधिनियम, 1992, आया और प्रतिभूति अपील न्यायाधिकरण की स्थापना हुई जो सेबी के कार्यों की न्यायिक निगरानी करता है।

ठीक उसी तरह, भारत को एक आधुनिक बैंकिंग विनियमन कानून की आवश्यकता है, जो यह सुनिश्चित करे कि जब भी प्राधिकरण वित्तीय संस्थाओं के साथ जुड़ते हैं, तब नियामकीय प्रवर्तन मामलों में कानून का शासन और प्राकृतिक न्याय पूरी तरह से लागू हों। आखिरकार, एक लोकतंत्र में, वित्तीय कंपनियों को इस आश्वासन की जरूरत है कि न्याय मनमाने तरीके से नहीं होगा। हम सभी, नागरिकों, जमाकर्ताओं और वॉलेट तथा क्यूआर कोड उपयोगकर्ताओं के रूप में, यह जानने का अधिकार रखते हैं कि पीपीबीएल में क्या गलत हुआ।

जनसत्ता

Date:24-02-24

चुनाव में पारदर्शिता

संपादकीय

चंडीगढ़ नगर निगम मेयर का चुनाव निर्वाचन प्रणाली में एक काले अध्याय के रूप में दर्ज हो चुका है। सर्वोच्च न्यायालय ने उस चुनाव में मतपत्रों को गलत तरीके से निरस्त करने और एक हारे हुए पक्ष के प्रत्याशी को मेयर घोषित करने पर कड़ी प्रतिक्रिया जताते हुए कहा कि स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव संविधान की आधारभूत संरचना का हिस्सा है। इसे सुनिश्चित कराना जरूरी है। गौरतलब है कि चंडीगढ़ मेयर के चुनाव में पीठासीन अधिकारी ने कुछ मतपत्रों पर खुद निशान लगा कर उन्हें निरस्त कर दिया था। वह सारा वाकया कैमरे में भी दर्ज हुआ था। इस तरह मनमानी और धोखाधड़ी करके सरेआम किसी पार्टी के प्रत्याशी को हराने और किसी पार्टी के प्रत्याशी को विजयी घोषित करने का यह पहला प्रत्यक्ष प्रमाण था । इस पर सर्वोच्च न्यायालय की नाराजगी स्वाभाविक थी। मगर चुनावों में मत चोरी और धोखाधड़ी कोई नई बात नहीं है। पहले जब मतपत्रों के जरिए मतदान होते थे, तब कई जगह दबंगों के मतपेटी लूटने

और उन्हें अपने पक्ष के मतपत्रों वाली पेटी से बदल देने की घटनाएं खूब हुआ करती थीं उसे रोकने के लिए मतदान मशीनों का इस्तेमाल शुरू हुआ। दावा किया गया कि इससे मतदान में पारदर्शिता आएगी और किसी भी प्रकार की गड़बड़ी की आशंका दूर होगी।

मगर अब तो मतदान मशीनों पर भी गंभीर शक जाहिर किया जाने लगा है। विपक्षी दल मतपत्रों के जरिए मतदान कराने या फिर मतदान मशीन को त्रुटिपूर्ण बनाने की मांग कर रहे हैं। कहा जा रहा है कि मतदान मशीनों को बाहर से संचालित किया जा सकता है। इस तरह सत्ताधारी दल दूसरे दलों के मतों को हटा कर अपने पक्ष में मतों की संख्या बढ़ा लेता है। विपक्षी दलों का दावा है कि उनके पास इस बात के पुख्ता प्रमाण हैं। कुछ जगहों पर मतगणना के बाद मतदाता सूची पर अंकित मतों और मतदान मशीन से निकले मतों में अंतर भी देखा गया है। इस तरह अब निर्वाचन आयोग की निष्ठा पर भी सवाल उठने लगे हैं। ऐसे में यह सवाल अब बड़ा बन चुका है कि सर्वोच्च न्यायालय के इस कथन का पालन कैसे हो कि चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष हों। चुनाव लोकतंत्र की आत्मा है। अगर वही प्रश्नांकित होने लगा है, तो लोकतंत्र की अवधारणा धुंधली होगी ही। फिर तो लोगों के मतों का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा, जो मतों की अपने पक्ष में कर सकेगा, वही सत्ता में बना रहेगा।

चंडीगढ़ की घटना ने चुनाव प्रक्रिया पर उठ रहे सवालों को और गहरा किया है। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने संबंधित पीठासीन अधिकारी के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई की सलाह दी है। मगर सवाल पूरी चुनाव प्रणाली को पारदर्शी बनाने का है। अगर बड़ी संख्या में राजनीतिक दलों को वर्तमान चुनाव प्रक्रिया पर संदेह है और आम मतदाता भी इसे लेकर सशंकित हैं, तो इसके निराकरण का उपाय होना ही चाहिए। चंडीगढ़ मेयर के चुनाव में तो बहुत कम मतपत्र थे, मगर जब उसमें धांधली करने की कोशिश की गई, तो बड़े पैमाने पर पड़ने वाले मतों में अगर इसी तरह हेराफेरी होने लगे, तो वह लोकतंत्र पर घातक प्रहार साबित होगा। मगर निर्वाचन आयोग इसे लेकर अब भी गंभीर नजर नहीं आता। उसे लोकतंत्र के पहले पायदान पर ही पारदर्शिता लाने के असीमित संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं, अगर वह उनका इस्तेमाल करे, तभी स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव का भरोसा कायम हो सकता है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:24-02-24

देर से आया फैसला

मणिपुर उच्च न्यायालय ने मार्च 2023 में दिये अपने ही फैसले के उस पैरा को हटाने का आदेश दिया है, जिसमें मेइती समुदाय को अनुसूचित जनजाति (एसटी) की सूची में शामिल करने के लिए राज्य सरकार को कहा था। अदालत ने कहा यह पैरा सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा इस मामले में रखे गए रुख के विपरीत है। क्योंकि यह राष्ट्रपति का एकमात्र विशेषाधिकार है। मेतई समुदाय को एसटी का दर्जा दिए जाने के इस फैसले के बाद पुनर्विचार याचिका लगाई गई थी। राज्य की 53 फीसद आबदी मेतई की है जो हिंदू हैं और जो घाटी में रहते हैं। मणिपुर की राजधानी इंफाल में ही

57 फीसद आबादी रहती है। बाकी की 43 फीसद पहाड़ी इलाकों में आबादी रहती है। गौरतलब है कि मेतई को एसटी सूची में शामिल करने के फैसले के बाद कुकी आदिवासियों वाले इलाके चुरीचंदपुर तनाव की शुरुआत होकर राज्य भर में हिंसक आंदोलन फैल गया था, जो इस फैसले का विरोध कर रहे थे। इन हिंसक झड़पों में अब तक दो सौ से ज्यादा लोगों की जानें जा चुकी हैं। सैकड़ों बुरी तरह घायल हैं, जिनमें ज्यादातर कुकी बताए जाते हैं। इस दरम्यान लगातार हिंसा, बवाल व बंद के चलते राज्य की शांति व्यवस्था बुरी तरह प्रभावित रही। अब भी पूर्वोत्तर के इस राज्य में खूनी हिंसा जारी है। लोक सभा चुनाव करीब आने के कारण सरकार को चेतने की जरूरत पड़ी। जैसा कि अब अदालत ने कहा कि यह फैसला कानून की गलत धारणा के तहत पारित किया गया था और अदालतें एसटी सूची में संशोधन या परिवर्तन नहीं कर सकती। देखा जाए तो इसका असल खामियाजा नागरिकों ने भुगता है। राज्य कई महीनों से अशांत है। मेतई व कुकी के दरम्यान कभी रिश्ते सामान्य नहीं रहे हैं, उनमें हमेशा झड़पें होती रहती हैं, लेकिन इस दरम्यान विद्रोही स्थानीय पुलिस से भी भिड़े और सरकारी दफ्तरों व सार्वजनिक संपत्ति को बहुत नुकसान पहुंचाया। विरोध करना जनता का अधिकार है। यह सरकार की नेक नियति पर है कि वह फौरी तौर पर निर्णय ले । हुड़दंगियों व अराजक तत्वों को काबू करते हुए शांतिपूर्ण तरीके से मध्यस्थता की जानी चाहिए थी। देर से ही सही पर अंततः अदालत ने खुद के फैसले को पलट कर राज्य में शांति बहाली का महती कदम उठाया।